शंभुनाथ शर्मा डोगरी भाषा के बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि हैं। अपनी प्रशस्त एवं ओजपूर्ण लेखनी द्वारा उन्होंने देश, स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता का गुणगान किया। उनकी क्षेत्रीय भावना की कविताएँ भी जातीय चेतना से अनुप्राणित हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि डोगरी कवि राष्ट्रीय एकता और अखंडता को सर्वोपरि मानते हैं। कहीं भी क्षेत्रीय भावना को उभार कर न तो उन्होंने अपना स्वार्थ साधा है और न ही राष्ट्र के विघटन को ही प्रोत्साहित किया है। उनकी क्षेत्रीयता राष्ट्रीय भावना की उपकारक है। अपनी जन्म-भूमि से जुड़े रहकर कवि राष्ट्रीय चेतना के महायज्ञ में समिधा देता रहा है।

इतिवृत्त परम्परा के अंतिम कवि शंभुनाथ शर्मा अपने सांस्कृतिक विरसे से लोक-तत्त्व को कल की एक अमूल्य धरोहर के रूप में सँभाले हुए हैं और यह उनकी कविता की अन्तर्वर्ती शक्ति है। उन्होंने वर्णनात्मक शैली में डोगरा जन-जीवन एवं परिवेश का अत्यंत कलात्मक और प्रामाणिक अंकन किया है। वे निष्ठावान मानसिकता के कवि हैं। यह निष्ठा मानवतावाद के मूलभूत सिद्धांतों से उत्प्रेरित है। समय-समय पर उनका सामना जैसी स्थितियों से पड़ता रहा, उन्हें वे मानवता, राष्ट्रीय हित अथवा सौंदर्यवादी दृष्टि के अनुरूप कविता में ढालते रहे।

कवियों की जिस पीढ़ी से शंभुनाथ का संबंध रहा है, उसके समक्ष कविता यथार्थ चित्रण द्वारा मात्र जीवन की तल्खी उभारने की विधा नहीं है। उनकी मान्यता रही है कि कविता द्वारा समाज को नई दिशा दी जा सकती है। अथवा इस दिशा में उन्मेषकारी प्रयास तो होना ही चाहिए। उन्होंने मनुष्य को सक्रिय होकर समय-स्वर पहचानने का, देश प्रेम का और मानवता की सेवा का संदेश दिया है। वे मानते हैं कि मानव संस्कृति की चरम उपलब्धि शांति है जिसमें मानवीय प्रतिभा, सृजन, कल्पना और विचार अपने शिखर पर पहुँचते हैं। शांति प्रेम और सद्‌भाव के पेड़ का अमृत फल है। मानवीय विकास का ध्येय इसी अमृत फल से संबद्ध होना चाहिए।

इस विनिबंध के लेखक श्री ओम गोस्वामी हिन्दी और डोगरी दोनों भाषाओं में लिखते हैं। उनकी बहुत-सी कृतियाँ पुरस्कृत हैं। उनके कहानी संकलन 'सुन्ने दे चिड़ी' (सोने की चिड़िया) के लिए उन्हें साहित्य अकादेमी द्वारा 1986 में पुरस्कृत किया गया। सम्प्रति, वे 'जम्मू कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादेमी' में शब्द कोश अनुभाग के प्रमुख संपादक है। प्रस्तुत कृति में कवि शंभुनाथ शर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ भारतीय विचारधारा को उनके योगदान पर प्रकाश डाला गया है।

पन्द्रह रुपये

शंभुनाथ शर्मा

ओम गोस्वामी

भारतीय साहित्य के निर्माता

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, जिसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है । भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्रचीन और चित्रलिखित अभिलेख ।

नागार्जुनकोण्डा : दूसरी सदी ईसवी

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

शंभुनाथ शर्मा

लेखक

ओम गोस्वामी

साहित्य अकादेमी

परिप्रेक्ष्य

डुग्गर का सांस्कृतिक भूगोल :

हिमालय की पर्वत शृखलाओं में अवस्थित जम्मू और कांगड़ा की नैसर्गिक छटा देखते ही बनती है । इस वर्णनातीत सौंदर्य ने मर्मज्ञ हृदयों में सदा सौंदर्य चेतना को छलकाया है । प्रकृति ने वरद हस्त से भाव-संसार का प्रतिनिधित्व करने वाले कवियों की काव्यानुभूति को समृद्ध किया है । डोगरा-पहाड़ी कवियों ने धौला-धार, काली-धार और अन्य प्राकृतिक उपदानों का वर्णन करके वस्तुतः उस अनूठे भाव-सौंदर्य का गान किया है, जिसकी छवि प्रत्येक सहृदय के मानस पर अमिट छाप छोड़ जाती है । ऐतिहासिक दृष्टि से जम्मू और कांगड़ा को शांति और सद्भावना की शरण-स्थलियां कहा जाता है । इन दोनों क्षेत्रों को दारुल-अमान की संज्ञा दी जाती रही है ।

पर्वतीय उपत्यकाओं, ढलानों, मैदानों अथवा तलहटियों में बसे डोगरा-पहाड़ी लोग मेहनती और मुख्यता कृषि-जीवी हैं । परंतु यह एक तथ्य है कि पड़ोसी प्रदेश पंजाब की तरह सोना उगलने वाली भूमि के स्वामी न होते हुए भी यह लोग अपनी कड़ी मेहनत और कम उपज के बावजूद सनातन संतुष्टि में जीते आ रहे हैं । इतना ही नहीं, जीवट के धनी यह लोग अपने क्षेत्र को देव-भूमि कहने में विशेष गौरव का अनुभव करते हैं । पुरातन भारतीय आस्था और संस्कृति की धारा अभी इस क्षेत्र में अबाध बहती आ रही है ।

डोगरा-पहाड़ी लोग मुख्यता शक्ति के उपासक हैं । पुरा दंत कथाओं के अनुसार शिव अर्धांगिणी पार्वती चूंकि हिमालय के इसी क्रोड़ में उत्पन्न हुई थी, इसलिए इन लोगों का अपनी पुरातन मान्यताओं के प्रति श्रद्धावनत होना स्वाभाविक है । शक्ति उपासना का प्रचलन भारत के किसी प्रदेश में उतना नहीं है जितना कि जम्मू

और हिमाचल में चला आ रहा है । सैकड़ो शक्ति मंदिर शक्ति-पूजा और अंततोगत्वा पर्वत पुत्री पार्वती की पौराणिक प्रतिष्ठा की कथा कहते नज़र आते हैं । जम्मू प्रांत में वैष्णो देवी, बाहवे वाली, महामाया, रिऊशिरा देवी, मनसा देवी, बाला सुंदरी, सुकराला और सरथल अष्ठादश भुजी आदि के प्रमुख शक्ति पीठों के अतिरिक्त अनेक छोटे-छोटे देवी-मंदिर हैं । इस भाँति हिमाचल में ब्रजेश्वरी, ज्वालामुखी, चिंतपुरणी, नयनादेवी, चामुंडा आदि अनेक अन्य मंदिर डोगरा जाति में मूला प्रकृति एवं मातृका शक्ति की उपासना के साक्षी हैं । शक्ति-पूजा का मुख्य कारण यहाँ के जन-मानस में प्राचीन काल से चली आ रही यह धारणा है कि पार्वती का जन्म जम्मू के पर्वतीय राज्य 'चनैहनी' में यहाँ के नरेश राजा हिमवान के घर हुआ था । शिव से संबद्ध मिथकों में वर्णित अनेक स्थान जम्मू के पर्वतीय क्षेत्र में आज भी विद्यमान हैं ।

हरियाणा प्रदेश के शैव जंगम अपनी प्रसिद्ध शिव गाथा में यों गाते हैं—

"जम्मू देस में नगर चंदैनी,
ता मैं रहता मैंचल राजा ।"

तमाम मातृका शक्तियों की मूलाधार पार्वती को माना गया है । यही कारण है कि डोगरा-पहाड़ी लोग शक्ति के उपासक हैं ।

शक्ति उपासना का मनोवैज्ञानिक पहलू यह है कि डोगरा-पहाड़ी लोग सदियों से सैन्य व्यवसाय को अपनाते आए हैं । क्षीण आर्थिक दशा भी उन्हें यह व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य करती रही है । परंतु इस व्यवसाय के प्रति उनमें एक आकर्षण उस परंपरा के कारण भी है जो प्रायः डोगरा जाति के सांस्कृतिक मूल्यों में सम्मिलित हो चुकी है । यही कारण है कि डोगरी लोकगीतों में बहुत ज्यादा संख्या ऐसे गीतों की है जिनमें बिरहनी नायिका सिपाही (सैनिक) के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही है । इस परंपरा का सर्वज्ञात पहलू है—देश हित में मृत्यु का वरण । अतएव सामरिक मानसिकता, डोगरा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । जीवन-यापन

की कठोर परिस्थितियों से दो-चार होने वाले डोगरा लोग युद्ध में जहाँ दिलेरी और वीरता की मिसाल कायम करते आए हैं, वहीं उनकी कलागत उपलब्धियां भी कम नहीं हैं । अमन की छत्रछाया में इस क्षेत्र ने पहाड़ी चित्रकला की अनुपम शैली को जन्म दिया है । बसोहली-कांगड़ा की सूक्ष्म चित्रकला का उन्नयन डोगरा-पहाड़ी लोगों के कला प्रेम का साक्षी है । इस शैली के चित्र आज लंदन, बोस्टन एवं मास्को की कलादीर्घाओं में शोभायमान होकर डोगरा-पहाड़ी लोगों और उनकी कला समझ की कीर्तिपताका बने भारत के यश को चार चाँद लगा रहे हैं ।

प्राचीन संस्कृत साहित्य में जम्मू और कांगड़ा आदि क्षेत्रों का वर्णन 'वाहिक' प्रदेश के अंतर्गत हुआ है । इन्हें क्रमशः त्रिगर्त और द्विगर्त कहा जाता रहा है । विद्वानों का मत है कि मूलतः दोनों प्रदेश त्रिगर्त के अंतर्गत आते थे, बाद में त्रिगर्त के सादृश्य पर जम्मू के पहाड़ी प्रदेश के लिए द्विगर्त का प्रचलन हुआ । इस संज्ञा का प्रचलन भी कम पुराना नहीं है । चंबा के एक ताम्रपट में दसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के घटनाक्रम में दुर्गरिश्वर अथवा डुग्गर नरेश का ज़िक्र आता है । द्विगर्त से डुग्गर शब्द का विकास हुआ बताया जाता है । डुग्गर के वासी डोगरा कहलाए परंतु डुग्गर व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है । सूफी संत बाबा फरीद के एक वाक् में डुग्गर शब्द का उल्लेख हुआ है ।

बहरहाल, यह सुनिश्चित है कि विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित मद्र देश वस्तुतः जम्मू और हिमाचल क्षेत्र ही है और तौषी नदी सूर्यपुत्री तवी नदी है । डोगरा क्षेत्र की सांस्कृतिक विशिष्टता एवं डोगरा संज्ञा में समाहित होने वाले क्षेत्रों की परिगणना कविराज भोलानाथ ने यों की है—

लोका डुग्गर देशजा न चपला नानर्थवाद प्रिया : ।
ते पश्यन्ति सुहृद्दृशा निज सखीन काश्मीर देशोभ्दवान ।।
खण्ड कुल्लुप्रदेशव्यापि निखलं शिमलाद्रिपर्यन्तगम् ।
सर्व डुग्गर संज्ञयास्ति प्रथितं नाना नृपै शासितम् ।।

-राजतरङ्गिणी (परिशिष्टम)

अर्थात्—वाद-विवाद के प्रेमी परंतु चंचल स्वभाव से रहित डुग्गर देश के लोग कश्मीर प्रदेश के प्रति सद्भावना रखते हैं और उनसे मित्रवत् व्यवहार करते हैं । जो प्रदेश उत्तर की ओर कुल्लू प्रदेश और पूर्व में शिमला तक व्याप्त है, वह सारा प्रदेश डुग्गर कहलाता है और यह अनेक राजाओं द्वारा प्रशासित है ।

अंग्रेज़ों से भी पहले कुल्लू, कांगड़ा, शिमला, पठानकोट, गुरदासपुर, दीनानगर, शकरगढ़ (अब पाकिस्तान) और तहसील हमीरपुर (होशियारपुर), डफरवाल (स्यालकोट), मनावर छंभ आदि विस्तृत क्षेत्र के लोग, प्रमुख राजाओं की सेनाओं में काम करते थे । भाषाई एवं सांस्कृतिक एकता के आधार पर अंग्रेज़ों ने इन क्षेत्रों से डोगरा रेजीमेंटें संगठित की थीं । आज भी भारतीय सेना की डोगरा टुकड़ियों में इन क्षेत्रों के लोग इसी आधार पर भरती होते हैं ।

विस्तृत भू-क्षेत्र पर फैले डोगरा-पहाड़ी लोगों की सांस्कृतिक एकता यहाँ के जन-जीवन की रंगीन मिजाज़ी से उद्भूत है । बुवाई, जुताई, कटाई करते हुए किसान मेहनत के गीत गाते हैं तो सामूहिक कृषि कार्यों में लगे हुए लोग गायन एवं वादन द्वारा सामुदायिक जीवन का अनुपम दृश्य प्रस्तुत करते हैं । पर्वतों पर रात्रि की नीरवता को भंग करते बाँसुरियों और चंग के मादक स्वर और खामोशी के पहलू से फूटती पहाड़ी गीतों की स्वर लहरियां—पहाड़ी जन-जीवन की अभिन्न पहचान हैं । सरल हृदय पहाड़ी लोग शांति और मेहनत को ही जीवन का मूलमंत्र मानते हैं । परंतु वे आनंद का कोई अवसर खाली नहीं जाने देते । यही कारण है कि प्रत्येक सामुदायिक गतिविधि को एक उत्सव का-सा महत्त्व प्राप्त है । मेलों, नृत्यों एवं धार्मिक वृत्ति से संबद्ध अनुष्ठानों में जन-मानस की रागात्मकता के दर्शन होते हैं । यह सांस्कृतिक चिन्ह डोगरा-पहाड़ी लोगों की ज़िंदादिली का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं ।

सांस्कृतिक एकात्मकता :

किसी ने सत्य ही कहा है कि प्रकृति ऐसा दर्पण है जिसके द्वारा

हम ईश्वरीय सत्ता का दर्शन कर पाते हैं । इसी भाँति यदि कवि मन को युगीन यथार्थ का प्रतिफलक कहा जाए तो कोई अनौचित्य नहीं होगा । कवि की आवाज़ जनता की आवाज़ होती है । डोगरी-पहाड़ी कवियों ने जम्मू और कांगड़ा की सांस्कृतिक एकात्मकता की पुष्टि अपनी रचनाओं में की है । लालचंद प्रार्थी ने इस बहुरंगी समाज के विषय में यों लिखा है—

कुल्लू दा दशहरा, चंबे मिंजरां दे मेले ओ ।
कांगड़े ते जम्मू छिंजां घुलन गुरु चेल्ले ओ ।
चंबा, कुल्लू, कांगड़ा ते जम्मू इक देश ओ ।
ऊना, देहरादून, हिमाचल परदेस ओ ।"

चंबा, कुल्लू, कांगड़ा, जम्मू एक ही सांस्कृतिक खंड है । कुल्लू का विख्यात 'दशहरा मेला' और चंबा का 'मिंजरों का मेला' तमाम पहाड़ी लोगों के सांझे पर्व हैं । जम्मू और कांगड़ा के जन-मानस का उल्लास इन क्षेत्रों में आयोजित होने वाले दंगलों में व्यक्त होता है । इन स्थानों के अतिरिक्त ऊना, देहरादून तथा हिमाचल प्रदेश के सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों की संस्कृति एवं भाषा में स्पष्टतया एक सांझ है ।

जम्मू के सुप्रसिद्ध कवि रघुनाथ सिंह सम्याल इस विषय में कहते हैं—

"भाव बी, भेस बी, देस बी रांगड़ा,
मीरपुर, जम्मुआं, नूरपुर, कांगड़ा ।
सोहे दी ब्हार ते बसोए दा भांगड़ा,
दब्बियै ढोल बजाई जायां —
डोगरा देस जगाई जायां.....।"

हमीरपुर, जम्मू, नूरपुर और कांगड़ा का क्षेत्र एक ही रंग में रंगा हुआ है । यहाँ के लोगों का भाव और भेस दोनों एक हैं । भाव से कवि का तात्पर्य भाषा और इसके मीठे गीतों तथा संस्कृति से है जबकि भेस से वह वेश-भूषा तथा जातीय आचरण की एकता की बात कहता है ।

स्वतंत्रता के स्फुलिंग और स्वामी भक्ति :

डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र में शांति, सौहार्द और भाईचारे की युगीन परंपरा के कारण ही यहाँ बसोहली-कांगड़ा चित्र शैली पनप सकी । प्रशांत वातावरण में युगीन लौकिक परंपराएं अबाध गति से पलती-बढ़ती रही हैं । सदियों से सामंती मानसिकता का बोझा ढो रहे जनमानस में नए जीवन मूल्यों और जीवन की बदलती सच्चाइयों को ग्रहण करने की सामर्थ्य नहीं रहती । अपितु, नएपन और बदलाव के प्रत्येक स्वर का विरोध किया जाने लगता है । यही कारण है कि 1947 ई. तक डोगरा राजवंश की सरपस्ती तले भारतीय स्वतंत्रता के स्वर उभर नहीं पाए । जो होता आ रहा है, इसके प्रति अधिकांश लोग संतुष्ट नज़र आते हैं ।

जम्मू और कांगड़ा, डोगरा-पहाड़ी संस्कृति के दो केंद्र होते हुए भी राजनीतिक आचरण की दृष्टि से दोनों की दिशाएं विपरीत हैं । जम्मू में जहाँ शासन एवं सत्ता दोनों प्रायः केंद्रीय सत्ता के वफादार रहे हैं, वहीं कांगड़ा में कभी-कभार केंद्र से स्वतंत्र होने की अभिलाषा भी प्रतिभासित होती है । जम्मू कभी काबुल और तक्षशिला के राजाओं की पहाड़ी जागीर रहा था, जिसे कठिन समय में वे शरण के लिए इस्तेमाल करते थे । प्राचीन जम्मू में सत्ता का केंद्र 'पुरमंडल' से संचालित होता था, जिसे प्रख्यात विद्वान जगदीशचंद्र साठे पूरु राजाओं की राजधानी मानते हैं ।

1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में जम्मू की सेनाओं ने अंग्रेज़ों की ओर से भाग लिया था । 1920 ई. में अंग्रेज़ों की ओर से प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेकर लौटने वाली डोगरा पलटन के सम्मान में आयोजित एक समारोह में महता मथरादास ने जो कविता पढ़ी उससे प्रसंगवश डोगरा शूरवीरों की 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में अता की गई निषेधात्मक भूमिका को यों सराहा गया—

"दिल्लियै दा तुसें गदर चुकाया,
पैरें एठ अगरूर रलाया,
डुग्गर दी पेच रखाई ।"

अर्थात्—1857 ई. के गदर को दबा कर तुमने बागियों के

अभिमान को मिट्टी में मिला दिया । दिल्ली में गदर खत्म करके तुम ने डोगरा वीरता की पेंच रख ली ।

वीरता की यह पेंच विदेशी आका के लिए स्वामी-भक्ति का कीर्तिमान थी । दूसरी ओर कांगड़ा के डोगरा सपूत बजीर रामसिंह पठानिया ने नूरपुर से आज़ादी की ज्योति प्रज्वलित की । वे अंग्रेज़ आधिपत्य को स्वतंत्रता के लिए चुनौती मानते थे । संभव है उन्हें व्यापक राष्ट्रीय हितों में स्वतंत्रता की परिभाषा ज्ञात न हो । तो भी विस्तारवादी एवं उपनिवेशवादी अंग्रेज़ साम्राज्य से टकराने वाला वह पहला डोगरा योद्धा था । 1848 ई. में उसने जम्मू और नूरपुर के पहाड़ी क्षेत्रों से फौजियों की कमान करते हुए सशस्त्र विद्रोह करके शाहपुर कंढी पर कब्ज़ा किया । नूरपुर रियासत की आज़ादी की घोषणा के साथ ही जम्मू और जसरोटा क्षेत्र के चार सौ मन्हास और पठानिया वंशों के सैनिक मंगल सिंह के नेतृत्व में रामसिंह पठानिया से आ मिले । उधर आज़ादी की इस चिनगारी को बुझाने के लिए जालंधर के कमिशनर और कांगड़ा के डिप्टी कमिशनर फौजी दस्तों के साथ शाहपुर कंढी की ओर बढ़े । इस विशाल सेना के आगे रामसिंह का मुट्ठी भर सैनिकों के साथ टिक पाना संभव न था । इसलिए, उसने किले से निकलकर जंगल में मोर्चे संभाल लिए और शिवा जी की भाँति छापामार युद्ध कौशल का आश्रय लेकर अंग्रेज़ों को अपार हानि पहुँचाई । 1849 ई. में बसोहली रियासत के राजा शेरसिंह ने पाँच सौ फौजियों का एक दल रामसिंह के सपुर्द किया । गुरिल्ला युद्ध जारी रहा । अंततः 'उल्ले दी धार' नामक पर्वतीय स्थल पर आमने-सामने की लड़ाई में क्वीन विक्टोरिया के निकट संबंधी राबर्ट पील का भतीजा कर्नल जान पील और उसका साथी, रामसिंह द्वारा तलवार के घाट उतारे गए । दोनों पक्षों का भारी नुकसान हुआ । रामसिंह ने कांगड़ा, नदौन, डाडा सीबा, गुलेर आदि के राजाओं से सैनिक सहायता की मांग की, परंतु सब ने न कह दी । रामसिंह छिपते-छिपाते कांगड़ा पहुँचे । यहाँ एक ब्राह्मण ने उन्हे शरण दी, किंतु एक राजपूत की गद्दारी के कारण अंग्रेज़ो द्वारा पकड़ लिए गए । तब उन्हें कांगड़ा, कलकत्ता और अंततः सिंगापुर

की जेलों में कैद रखा गया, जहाँ 1858 ई. में उनका देहांत हो गया । स्वतंत्रता के निमित्त अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले मंगल पांडे और तात्या टोपे समान महान स्वतंत्रता सेनानियों की पंक्ति में रामसिंह पठानिया का नाम भी सदा स्मरणीय है ।

रामसिंह पठानिया पर अनेक लोक-गाथाएं समस्त पहाड़ी प्रदेश में प्रचलित हैं । लोक-मानस उसकी वीरता और बलिदान पर बलिहारी है—

"जमदे पकड़ी तलवार राजा,
लहुए दे बगाई दित्ते हाड़ राजा ।
करी कल्ला पठानिया जोर लड़ेआ ।।"

जन्मजात योद्धा रामसिंह पठानिया ने रक्त की धार बहा दी । एक मात्र हिम्मत के सहारे अकेले पठानिया ने वैरी से लोहा लिया ।

लोक-गाथाओं में रामसिंह पठानिया का बलिदान तो जीवित है, परंतु किसी भी कवि ने न तो उनके महान बलिदान पर सहारना के दो शब्द ही लिखे है और न ही ब्रिटिश गुलामी के जूए को उतार फेंकने के लिए दिलेरी से बात ही की है । जम्मू या कांगड़ा में कहीं कोई क़लम आज़ादी की नेमतों का गुणगान करने के लिए नहीं उठी । एकमात्र अपवाद बाबा कांशीराम हैं, जिन्हें स्नेहवश लोग पहाड़ी गाँधी कहते थे ।

रजवाड़ाशाही के दौर में, जम्मू-कश्मीर में आज़ादी का कोई स्वर उभरने न दिया गया, जबकि पड़ोसी राज्य पंजाब में आज़ादी के परवाने निरंतर अपने प्राणों की आहुतियां दिए जा रहे थे । रियासत जम्मू-कश्मीर में देश भक्तों की गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाने के लिए महाराज प्रताप सिंह ने एक सरकारी इश्तेहार जारी किया, जिसमें अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध प्रचार करने वालों को कठोर दंड का प्रावधान रखा गया था ।

सामंती सत्ता अपने हितों के अतिरिक्त इंग्लीशिया हकूमत के हितों का बड़ी मुस्तैदी से परिरक्षण कर रही थी । गुलामी-दर-गुलामी का दौर था । प्रथम विश्व युद्ध से लौटने पर रघुनाथ पलटन की

संस्तुति में लिखी गई पंक्तियां गौर तलब हैं—

"हून तुसें जाई अफ्रीका, साधी,
मारी नसाए जर्मन अपराधी ।
फिरी अंग्रेजी दुहाई ।"

कैसी विडंबना है, प्राण न्योछावर किए भारतीय सपूतों ने, किंतु दुहाई फिरी अंग्रेज़ों की । कवि अंग्रेज़ों की दुहाई फिरने में डोगरा सैनिकों के निमित्त बनने पर, उनके अफ्रीका साधने और जर्मन अपराधी को सज़ा देने पर, गौरव का अनुभव करता है । स्पष्टतया यह दुहरी गुलामी की संस्तुति का एक शानदार उदाहरण है । अनपढ़ सिपाही को उस युद्ध का औचित्य समझाने के लिए जिसमें वह सम्मिलित होने जा रहा था, अक्सर कहा जाता कि जर्मन देश का राजा अत्याचार कर रहा है । वह कंस और रावण का अवतार बन कर धरती पर अवतरित हुआ है, जबकि ब्रिटेन नरेश जार्ज धर्म की राह पर चल रहा है । इन भावों की प्रतिच्छाया मथरादास की कविता में स्पष्टतया उभरी है ।

डोगरा-पहाड़ी क्षेत्र लोकगीतों का अक्षय भंडार है । जहाँ अनेकानेक विषयों पर सुमधुर गीतों की भाव-लहरियां यत्र-तत्र गूंजती सुनाई पड़ती हैं । परंतु यह विचित्र बात है कि रामसिंह पठानिया की उपरिवर्णित गाथा के अतिरिक्त भारतीय स्वतंत्रता की निशानदेही करता कोई अन्य गीत उपलब्ध नहीं होता, जबकि रामसिंह पठानिया के हाथों मारे गए कर्नल जीन पील के विषय में डुग्गर में लोहड़ी पर्व के गीत में व्यंग्यात्मक वर्णन उपलब्ध होता है । यथा—

"घोड़ी पर काठी,
जीनपाल दा हाथी ।"

कारण साफ है कि इस क्षेत्र में आज़ादी के भाव का स्फुरण नहीं होने दिया गया ।

राज-भक्ति की परंपरा :

जम्मू-कश्मीर में आज़ादी के प्रति बे-परवाही का कारण मात्र सामंती सख्तियां ही नहीं हैं । कुछेक और कारणों से भी लोग इस

आंदोलन के प्रति पराङ्मुख रहे हैं । लोग इस भ्रम में थे कि राजा अपना है, इसी संबंध से राज भी अपना है । देर बाद जब यह भ्रम टूटने लगा तो दीनूभाई पंत ने इसे यों व्यंजित किया—

"लोक मीहुने मारदे, ए डोगरें दा राज ऐ,
डोगरें दा हाल मंदा, जुड़दा निं साग ऐ ।"

अर्थात्—लोग ताने देते हैं कि अब डोगरों का राज है, इसलिए डोगरा जाति की पौ-बारह है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि डोगरों की बुरी हालत है । उन्हें खाने के लिए रोटी और शाक तक उपलब्ध नहीं है ।

परंतु यह स्वर तो तब उभरे जब डोगराशाही का ताना-बाना धराशाई होने के लिए चरमरा रहा था । इस से पूर्व, समय के शासक की स्तुति करना डोगरी कवियों के काव्य-सिद्धांतों का अंग बन चुका था ।

कवि महता मथरादास एक निष्ठावान राज सेवक के तौर पर सामंती परंपरा के वाहक बने हुए हैं—

"परताप सिंह महाराज जी देओ सीसां,
जेहुदे राज मिले सुख सारे ।

•••••

सीसां देओ महाराज गी दिनें-रातीं,
करदा पालन असें ब्राह्मनें दी ।
मंगो जै-सिरी राजा साहुब हुन्दी,
नीति सिक्खी जिनें प्रजा सांबने दी ।"

अर्थात्—महाराज प्रताप सिंह को दिन-रात आशिष दीजिए, जिनके राज्य में तमाम सुख मिल रहे हैं । जो दिन-रात प्रजा पालन की नीति पर चल रहे हैं और ब्राह्मणों के हितकारी हैं ।

इसी भाँति पं. संतराम शास्त्री ने लिखा—

"राज तेरो अटल होवे, प्रजा तेरी सुख बसे,
दुश्मनों का नाश होवे, दुनिया में तेरो यश बढ़े ।

••••

जम्मू भूपति नाम हरिसिंह, इति सुमंगल ।"

•••

धन्यवाद हो जयकार हो, प्रभु राज तेरो स्थिर रहे ।

इसी तरह हरदत्त शर्मा ने लिखा—

"तेरी रक्षा करने गितै धारेआ प्रभु अवतार,
दीन-दुखिएं दे दर्दी श्री हरिसिंह सरकार ।"

अर्थात्—महाराज हरिसिंह दीन-दुखियों की सुध लेने वाले हैं । वे हमारी रक्षा के लिए ईश्वर का अवतार बनकर अवितरति हुए हैं ।

इतना ही नहीं, बाद में डोगरी साहित्य में प्रगतिशीलता के संवाहक बन कर उभरे दीनूभाई पंत भी शुरू में इस संस्तुति परंपरा का आश्रय लेने से पीछे नहीं हटे । अपने प्रथम कविता संकलन "गुतलूं" में उन्होंने महाराजा हरिसिंह की स्तुति में लिखा—

"इस ताजे विच दिक्खो दया परमेसरें दी,
कैसा मेल मेली दित्ता, हरिसिंह हीरे दा ।

••••

अस सारे लोक इस जम्मुआ दे रौहुने वाले,
इस शुभ दिनै बिच खुशी ए मनाने आं ।
उस परमेसरें दे तुल्ल महाराजा जी दा,
धन्न-धन्न करि लक्ख जस गान्ने आं ।"

अर्थात्—कश्मीर रूपी ताज पर ईश्वर की कृपा तो देखें कि हरिसिंह के समान हीरा इस में जड़ दिया । हम तमाम जम्मू वासी, आज के शुभ अवसर पर खुशी मनाते हैं और ईश्वर-तुल्य महाराज का यश गाते हुए ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कहते हैं कि हमें ऐसा योग्य राजा दिया ।

इन कुछेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि राज-भगती की मिशाल पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती आ रही है । बीसवीं सदी का कवि वर्ग ही जब सामंतशाही को ईश्वरीय देन वर्णित करने लगेगा तो आज़ादी का निषेध करने वाली शक्तियों के चेहरे से पर्दा कौन उठाएगा । कवि वर्ग ही जब दिग्भ्रांत होने लगे, तब सामान्य जन का क्या हाल होगा । रास्ता दिखाने वाला ही जब राह भूल जाए